दुष्यन्त का चरित्र चित्रण

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

१. **धीरोदात्त नायक**- पुरुवंशी दुष्यन्त अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक है। वह एक राजर्षि भूपति है और नायक के लिये अपेक्षित प्रायः सभी गुण उसमें विद्यमान हैं। नायक के चार भेद होते हैं, धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीरप्रशान्त। उनमें धीरोदात्त नायक महाबलशाली (शोक-क्रोधादि से अभिभूत न होने वाला), अति गम्भीर, क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाला, स्थिर प्रकृति, विनय से अहङ्कार को दबाने वाला तथा दृढ़व्रत (प्रणपालक) होता है-

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।

स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।

राजा दुष्यन्त शास्त्रीय दृष्टि से धीरोदात्त कोटि का नायक है क्योंकि वह धीरोदात्त नायक के लिये अपेक्षित सभी गुणों से समन्वित है। शृङ्गारी दृष्टि से यदि देखा जाय तो दुष्यन्त दक्षिण नायक है क्योंकि शकुन्तला प्रति अगाध प्रेम के होते हुए भी वह अपनी अन्य (हंसपदिका तथा वसुमती) रानियों को रुष्ट नहीं करना चाहता। कलाकोविद होने के नाते कुछ लोगों ने दुष्यन्त को धीरललित की कोटि में रखा है। पर इस प्रकार का मत ठीक नहीं है। दुष्यन्त में धीरललित नायक के लक्षण घटित नहीं होते।

२. **आकर्षक व्यक्तित्व एवं सौन्दर्य से युक्त**- अतिशय सौन्दर्य से मण्डित नवयुवक दुष्यन्त के व्यक्तित्व में एक सहज आकर्षण एवं प्रभाव है। उसके दर्शन मात्र से ही **"यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति"** की उक्ति को स्मरण करती हुई दर्शक मण्डली उसके उदात्त गुणों का अवबोध कर लेती है। नगर वातावरण से सर्वथा दूर निर्विकार तपोवन में पालित घोषित तापस कन्या भी उसके दर्शन मात्र से हठात् प्रभावित एवं आकृष्ट हो जाती हैं। उसको देखकर प्रियंवदा की उत्सुकता सहसा मुखरित हो

जाती है- **"अनसूये, को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते"**। कण्व-दुहिता शकुन्तला तो दुष्यन्त के प्रथम दर्शन से हो उसके प्रेमपाश में बंध जाती है और बाद में तिरस्कार की अग्नि परीक्षा में भी विचलित नहीं होती। षष्ठ अङ्क में मेनका की सखी सानुमती जब दुष्यन्त को देखती है तो तिरस्कार से अपमानित होने पर भी उसके (दुष्यन्त के) वियोग में सन्तप्यमाना शकुन्तला के अलौकिक एवं दिव्यप्रेम के औचित्य को स्वीकार करती है- **"स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताऽपि अस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति"**। सानुमती की उक्त प्रशस्ति दुष्यन्त के गरिमामय व्यक्तित्व तथा आकर्षक सौन्दर्य की भव्यता का बोध कराती है।

दुष्यन्त के महनीय व्यक्तित्व एवं अलोकिक सौन्दर्य से आबालवृद्ध प्रभावित हो जाते हैं, चाहे वह नर हों या नारी। तृतीय अङ्क में कण्व का शिष्य राजा दुष्यन्त के प्रभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है क्योंकि उसके आश्रम में प्रविष्ट होते ही उसके आश्रम के सारे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो रहे हैं- **'अहो, महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः यत्प्रविष्टमात्र एवाश्रम तत्रभवति निरुपद्रवाणि नः कर्माणि संप्रवृत्तानि'**। सप्तम अङ्क में तपःपूत काश्यप (मारीच) की निर्विकारहृदया वृद्धा धर्मपत्नी दाक्षायणी भी दुष्यन्त की भव्याकृति एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व की प्रशंसा किये बिना नहीं रह पाती- **"सम्भावनीयाऽनुभावाऽस्याकृतिः"**। वृद्ध ब्राह्मण कञ्चुकी तो विरहवेदना से पीड़ित होने की दशा में भी अपने स्वामी दुष्यन्त की रमणीयता एवं नयनाभिरामता को देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाता है- **"अहो, सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः"**।

३. **महावीर एवं योद्धा**- क्षत्रिय राजा के अनुरूप दुष्यन्त पराक्रमी एवं योद्धा है। शाकुन्तल के प्रथम अङ्क में जब वह रथारूढ होकर धनुष की प्रत्यञ्चा पर बाण का सन्धान किये हुए मृग का अनुसरण करता है तो उसके सारथि को ऐसा प्रतीत होता है मानों पिनाक धनुष की प्रत्यञ्चा पर बाण का सन्धान किये हुए भगवान् शङ्कर ही मृग का पीछा कर रहे हैं– **"मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामिव पिनाकिनम्"**। अनवरत धनुष की प्रत्यञ्चा पर बाण का सन्धान करने तथा अथक श्रम के कारण दुष्यन्त का शरीर अत्यन्त कठोर एवं पुष्ट हो गया है तभी तो सेनापति को वह पर्वत पर विचरण करने वाले अति बलशाली गजराज की भाँति प्रतीत होता है-**"गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभति"**।

दुष्यन्त की वीरता एवं अमित शौर्य से राक्षस जगत् भी इतना भयभीत है कि उसे (दुष्यन्त को) राक्षसों के वध के लिये बाण-सन्धान की भी आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि प्रत्यञ्चा के टङ्कार मात्र से राक्षस सम्बन्धी विघ्न-बाधा दूर हो जाती है-

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैवं दूरतः।

हुङ्कारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति।।

उसे अपनी शक्ति एवं अदम्य शौर्य पर इतना विश्वास है कि वह विदूषक के साथ सैनिकों को राजधानी भेज देता है और अकेले ही आश्रम की रक्षा का भार वहन करता है। मानव-लोक ही नहीं देव-लोक को भी दुष्यन्त की वीरता पर पूर्ण विश्वास है। दैत्यों के साथ युद्ध (वैर) होने पर देवता या तो इन्द्र के वज्र पर भरोसा करते हैं या दुष्यन्त के अधिज्य धनुष पर-

आशंसन्ते समितिषु सुरा बद्धवैरा हि दैत्यैरस्थाधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे।।

दैत्यों से युद्ध करने के लिये देवराज इन्द्र उसे बुलाते हैं तथा उसके अद्भुत पराक्रम से इतना प्रभावित हो जाते हैं कि उसे अर्धासन देकर उसके गले में मन्दार-माला पहनाते हैं- **"मन्दरमाला हरिणा पिनद्धा"**। दुष्यन्त के शौर्य एवं अतुलित पराक्रम से प्रभावित होकर महर्षि मारीच को भी दुष्यन्त के लिये निम्नाङ्कित प्रशस्ति पत्र देना ही पड़ता है-

दाक्षायणि,

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।

चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः।।

मातलि द्वारा आक्रान्त माढव्य की पुकार सुनकर वह तुरन्त धनुष पर बाण चढ़ा कर दोड़ता है और तिरस्करिणी (अदृश्य होने की विद्या) द्वारा छिपे हुए मातलि को भी अपने बाण का निशाना बनाना चाहता है-

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।

हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः।।

दुष्यन्त का उक्त कथन धनुर्विद्या में उसके नैपुण्यातिशय का द्योतक है।

४. **आदर्श राजा**- दुष्यन्त एक ऐसा राजा है जिसमें न्यायप्रियता, प्रजावत्सलता एवं कर्तव्यपरायणता कूट-कूट कर भरी है। उसके राज्य में कोई उद्दण्डता एवं कुकर्म करने का साहस नहीं करता। प्रजा के प्रति उसका वात्सल्यपूर्ण भाव है और उसका पालन वह अपनी सन्तान की भाँति करता है-

"प्रजाः प्रजाःस्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते श्रान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः"।।

अर्थात् महाराज दुष्यन्त अपनी सन्तान की तरह प्रजा का पालन करके थके हुए उसी प्रकार प्रकार एकान्त का सेवन कर रहे हैं, जिस प्रकार दिन में अपने झुण्ड को इधर-उधर (खेतों में) भेजकर धूप से सन्तप्त गजराज शीतल स्थान का सेवन करता है।

वह पीड़ितों की रक्षा में सदा तत्पर रहता है। उसके शस्त्र का उपयोग निरपराधों को पीड़ित करने के लिये नहीं होता अपितु निःसहायों की रक्षा में होता है। आश्रम में जब एक तपस्वी आश्रम के मृग को मारने का **"आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि"** यह कह कर निषेध करता है तब वह तुरन्त धनुष पर से बाण उतार लेता है। उसके राज्य में अन्यायियों एवं कुपथगामियों के लिये कोई स्थान नहीं है। वह सदा उन्हें नियन्त्रित करता रहता है-

"नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः।
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय"।।

वह जनता जनार्दन की सेवा के लिये कभी भी अपने सुख की परवाह नहीं करता-

"स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्"।।

अर्थात् आप (दुष्यन्त) अपने सुख की चिन्ता न करते हुए प्रजा के हित के लिए प्रतिदिन कष्ट उठाते हैं। अथवा आपका कार्य-व्यापार ही ऐसा है क्योंकि वृक्ष अपने सिर पर तीव्र धूप को सहन करता है और अपनी छाया से अपने आश्रितों के सन्ताप को दूर करता है।

वह राजा के पद को भोग का नहीं अपितु योग का साधन मानता है। वह सिंहासनारूढ होते हुए भी एक निर्लोभ मुनि की भूमिका निभाता है।वस्तुतः वह एक साथ मुनि और राजा दोनों है-

"अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः।

पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः"।।

वह अपनी प्रजा का शोषण नहीं अपितु पोषण करता है, और उनके पोषण हेतु ही उनसे कर ग्रहण करता है। तपस्वियों से कर ग्रहण की बात चलने पर वह कहता है कि अन्य प्रजा द्वारा दिया गया कर तो विनश्वर है। पर ये तपस्वी तो अपनी तपस्या के षष्ठांग भाग को जो कर रूप में देते हैं वह सर्वथा अविनश्वर है-

"यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद् धनम्।

तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः"।।

दुष्यन्त न्यायप्रिय शासक है और प्रतिदिन न्यायसम्बन्धी कार्यों में संलग्न रहता है। अस्वस्थ या अन्यत्र कार्य में व्यस्त होने पर अपने अमात्य पर न्याय करने का भार सौंप देता है। फिर भी न्याय के प्रति स्वयं दत्तचित्त रहता है। शासक होते हुए भी उसमें लोभ नाममात्र का नहीं है। सन्तानहीन धनमित्र के मरने पर उनकी सम्पत्ति को वह राजकोष में अधिगृहीत कर सकता था पर वह उसे (सम्पत्ति को) धनमित्र के गर्भस्थ शिशु को देने का आदेश देता हैं-**"ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति"**। प्रजाजन के प्रति उसका सहज एवं वात्सल्य पूर्ण प्रेम उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जब वह अपने को सन्तानहीन प्रजाजन का आत्मीयजन घोषित करवाता है-

"येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।

स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्"।।

अर्थात् प्रजा में जो भी व्यक्ति अपने जिस-जिस प्रेमी सम्बन्धी से वियुक्त होता है, पापकर्म के अतिरिक्त दुष्यन्त उनके लिए वह सम्बन्धी है, ऐसी घोषणा कर दो।

इस प्रकार दुष्यन्त एक प्रजापालक, न्यायप्रिय, कुशल शासक, कर्तव्यपरायण आदर्श राजा के रूप में हमारे सामने आता है।

५. **वात्सल्य प्रेमी**- समाजसेवी होते हुए भी दुष्यन्त के हृदय में सन्तान प्रति अगाध स्नेह एवं वात्सल्य भाव है। वियोगावस्था में आपनसत्त्वा शकुन्तला की स्मृति उसे बेचैन कर देती है-

"संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।

कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा"।।

षष्ठ अङ्क में व्यापारी धनमित्र की मृत्यु का समाचार सुनकर सन्तान हीनता की वेदना उसे शोकाकुल बना देती है। सन्तानहीन होने के कारण उसके हृदय में सन्तान सम्बन्धी लालसा सदैव उमड़ती रहती है। सप्तम अङ्क में मारीच के आश्रम में सर्वदमन को देखकर उसकी हृदयगत लालसा उद्दिप्त हो जाती है। परिणामतः उसका कोमल हृदय वात्सल्य प्रेम से ओत-प्रोत हो जाता है- **"नूनमनपत्यता माँ वत्सलयति"**। यह जानकर कि सर्वदमन तो उसी के आत्मा का प्रतिरूप है उसके आनन्द का पारावार नहीं रह जाता-**"भगवन्! अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा"**। महर्षि कश्यप के आश्रम में सुकुमार शिशु के देखने मात्र से उनकी और पुत्र की लालसा स्नेहसिक्त हो जाती है– **"कि न खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्तिह्यति मे मनः"**?

६. **विनयशील तथा मधुरभाषी**- एक पराक्रमी राजा होते हुए भी वह अति विनम्र है। मृगया व्यसनी होने पर भी आश्रम के मृगों पर प्रहार न करने के तपस्वी के निवेदन को दृष्टिगत कर धनुष पर से बाण उतार लेता है। वीतरागी तपस्वियों के प्रति उसके हृदय में समादर तथा विनयशीलता दोनों है। आश्रम में विनीत वेषधारण करके प्रवेश करने में ही उसे दिखलायी देता है– **"विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम"**। ऋषियों का साक्षात्कार होने पर उन्हें प्रणाम करता है और उनका कुशल क्षेम पूछता है। पञ्चम अङ्क में शार्ङ्गरव, शारद्वत तथा शकुन्तला के द्वारा कठोर वचनों का प्रयोग करने पर भी उसका अधीर एवं विचलित न होना उसकी कायरता का नहीं अपितु विनम्रता का परिचायक है। सप्तम अङ्क में वह भगवान् कश्यप के दर्शन करके ही आने की इच्छा प्रकट करता है- **"प्रदक्षिणी कृत्य भवन्तं गन्तुमिच्छामि"**। दुष्यन्त जन्मतः मधुरभाषी है। उसकी सुधासिक्त वाणी उसे सभी प्राणियों का हृदय भाजन बना देती है। प्रिय बोलने वाली प्रियंवदा उसके मधुरालाप से अत्यन्त

आह्लादित हो जाती है। आश्रम कन्याओं से विदा लेते हुए उसका यह कथन- **"दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि"** उसकी वाणी की मधुरिमा का प्रख्यापन करता है।

७. कलाकोविदा- ललित कलाओं के प्रति दुष्यन्त का सहज अनुराग ही नहीं अपितु वह उनका (ललित कलाओं का) मर्मज्ञ एवं प्रयोक्ता दोनों है। उसकी सङ्गीत कला की मर्मज्ञता का बोध तब होता है जब वह (राजा) महारानी हंसपदिका के गीत को सुनकर इन शब्दों में उसकी प्रशंसा करता है- **"अहो रागपरिवाहिणी गीतिः"**। षष्ठ अङ्क में वह शकुन्तला का इतना स्वाभाविक चित्र बनाता है जिसे देखकर वह स्वयं ही यह भूल जाता है कि यह चित्र है। शकुन्तला के चित्र में उसके प्रिय स्थानों को अङ्कित करने की इच्छा प्रकट करता है-

"कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च त तरोनिर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गेः कृष्णमृगस्य वामनयन कण्डूयमानां मृगीम्"।।

शकुन्तला के वनवास, सौकुमार्य तथा विनय के अनुरूप प्रसाधनों (सजावटों) की चित्र में कमी उसे खटकती हैं-

"कृतं न कर्णापितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे"।।

८. **मृगयाव्यसनी**-वह स्वभाव से मृगया-प्रेमी है। मृगया-प्रेम ही उसे कण्व के आश्रम में पहुँचाता है, जहाँ वह शकुन्तला का प्रेमी बन जाता है। बेचारा विदूषक तो उसके मृगया-व्यसन से अत्यन्त खिन्न हो गया हैं- **"एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि"**।

९. मातृभक्त- वह मातृभक्त और आज्ञाकारी पुत्र है। द्वितीय अङ्क में माता की आज्ञा पाते ही ऋषि-कार्य की विवशता के कारण विदूषक को माता के पास भेजता है।